B.A. III Hindi Hons.

गोस्वामी जी की काव्य दृष्टि

डॉ॰ सतीश चन्द्र पाठक

इस सृष्टि की यह विशिष्टता है कि यहाँ के हर प्राणी की एक जीवन दृष्टि होती है, जीवन जीने की एक शैली होती है जिसके आधार पर वह अपनी जीवनयात्रा को एक आयाम देता है। वैसे ही हर साहित्यकार की भी एक साहित्य या कला दृष्टि होती है जिसे दृष्टि में रखते हुए अपनी कला को आकार देता है। ~~बहुत~~ अनेक बार यह दृष्टि इतनी सीमित और वैयक्तिक होती है कि उस पर सामान्य समीक्षक विचार करना भी उचित नहीं समझता। समाज के लिए अनुपयुक्त होने के कारण ऐसे सिद्धान्तों का अस्तित्व शीघ्र ही विलीन हो जाता है। ~~गोस्वामी तुलसीदास~~ ठीक इसके विपरीत कई ऐसे सिद्धान्त निकलकर सामने आ जाते हैं जिनकी विवेचना युगों तक होती रहती है। आचार्य भरत मुनि का रस सिद्धान्त ऐसी ही साहित्यिक दृष्टि है जो आज भी प्रासंगिक ~~बना हुआ~~ होने के कारण विवेचनीय एवं स्मरणीय है।

गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस के ~~माध्यम से~~ रूप में विश्व को ऐसा ग्रंथ रत्न प्रदान किया है जिससे संपूर्ण विश्व युगों-युगों तक प्रकाशित रहेगा। इस ग्रंथ के भिन्न-भिन्न स्थलों पर गोस्वामी जी की जीवन दृष्टि की छाप स्पष्टतः दिखलाई पड़ती है। समाज के विभिन्न आयामों के विवेचन-विश्लेषण के क्रम में उन्होंने अपने साहित्य एवं कला दृष्टि का भी परिचय दिया है। यद्यपि यह परिचय अत्यंत संक्षिप्त अथवा संकेतों में ही उपलब्ध है; क्योंकि यहाँ न तो वह प्रासंगिक है और न उसके विवेचन का अवकाश। वहाँ तो राम कथा की मार्मिकता और उसकी सफलता पर ही उनकी दृष्टि है। उनके ग्रंथ का आरंभ यथापि मंगलाचरण से हुआ है -

वर्णानाम् अर्थसंघानाम् रसानाम् छन्दसामपि

मंगलानाम् च कर्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ। किन्तु विद्वानों का एक वर्ग इसमें काव्य आदर्शों का ज्ञान दर्शन करता है।

इस श्लोक में काव्य के समस्त अनिवार्य तत्वों का समाहार स्पष्टतः दिखलायी पड़ता है - वर्ण से शब्द बनते हैं; शब्द से वाक्य बनता है, वाक्य में अर्थ छिपे होते हैं, वर्णों के सम्यक नियोजन से छन्द बनते हैं और इन सभी उपकरणों से रस की निष्पत्ति होती है। इनमें से एक-एक उपकरण काव्य के लिए अनिवार्य हैं। आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में काव्य को पारिभाषित करते हुए लिखा है - 'वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्।' रस युक्त वाक्य काव्य है। वैसे ही रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्दों से काव्य का निर्माण होता है - रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्। (पंडित राज जगन्नाथ)। गोस्वामी तुलसीदास जी के इस श्लोक में प्रायः इन दोनों ही काव्य लक्षणों का समाहार दिखलायी पड़ता है। सच तो यह है कि श्लोक में सरस्वती एवं गणेश की वन्दना की गयी है किन्तु गोस्वामी जी ने बड़े ही कौशल के साथ इसमें काव्य लक्षणों को इस तरह पिरो दिया है कि यह भान भी नहीं होता कि इसमें काव्य लक्षण भी होंगे। इसी को कहते हैं - "अमित अरथ अरथ आखर थोरे।" तुलसी काव्य की यही सबसे बड़ी विशेषता है कि एक ही वाक्य में अनन्त अर्थ गुम्फित होते हैं।

काव्य का आविर्भाव कवि के हृदय में होता है किन्तु उसकी शोभा कवि के हृदय में न होकर काव्यरसिक या काव्य मर्मज्ञ के हृदय में होती है। वैसे तो अपनी कविता तो सबको अच्छी ही लगती है -

निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होहि अथवा अति फीका॥

गोस्वामी जी स्पष्ट करते हैं कि अपनी कविता स्वयं को ही मुग्ध करे यह कोई श्रेष्ठ स्थिति नहीं है। कविता का उत्स कहीं से फूटता है और उसकी शोभा अन्यत्र दिखलायी पड़ती है। कविता तो मणि के समान है जो पृथ्वी के गर्भ से निकलकर राजमुकुट या नारी की शोभा बनता है वैसे ही मोती भी हाथी के माथे पर वैसी शोभा नहीं पाता जैसी अन्यत्र शोभित होता है —

मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहि सकल सोभा अधिकाई॥

जो रसमर्मज्ञ है जिसे कविता के अन्तः सौन्दर्य की समझ है वही काव्य की रमणीयता की अनुभूति कर सकता है —

तैसेहि सुकवि कबित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं॥

गोस्वामीजी ने श्रेष्ठ काव्य की अपनी कसौटी बना रखी है। उनकी